P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-10* June- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

आदिवासी जीवन संघर्ष की गाथा – धार

सारांश

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य मे जहाँ एक ओर हम वैश्विक महासत्ता का स्वप्न देख रहे हैं, वहीं दूसरी ओर जंगलों में रहने वाला आदिवासी समाज बुनियादी सुविधाओं से कोसों दूर नजर आते हैं। वैश्विकता के इस युग में आदिवासियों पर निरन्तर अन्याय–अत्याचार हो रहा है। सरकार द्वारा घोषित योजनाएँ उन तक नहीं पहुँच पा रही हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के 70 वर्ष बाद भी भारतीय संस्कृति के सच्चे रक्षक ये आदिवासी समाज अभाव, उपेक्षा एवं शोषण की त्रासदी झेल रहे हैं। आजादी के 70 वर्ष के पश्चात् भी आदिवासियों को हाशिए से निकालकर मुख्यधारा में नहीं ला पाया है। केवल सरकार द्वारा दिए जाने वाले अनुदानों से लाभ उठाने हेतु और चुनाव के समय वोटों के लिए उनका इस्तेमाल किया जाता रहा है, अन्यथा उनकी सुध लेने की जरूरत कोई महसूस नहीं करता। परन्तु हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग हाशिए पर जीवन जी रहे इस समाज के प्रति संवेदनशील रहा है। सम्प्रति हिन्दी साहित्यकारों द्वारा आदिवासी समाज के प्रति गंभीर चिंतन परिलक्षित होने लगा है। सुदूर जंगलो में प्रकृति के सानिध्य में रहनेवाले, ज्ञान के आलोक से दूर, वैज्ञानिक प्रगति से अनजान,गरीबी, बेकारी, भुखमरी, अशिक्षा, अंधविश्वास से ग्रस्त इन आदिवासी का सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक जीवन को यथार्थ की भावभूमि पर रेखांकित करने में प्रखर–मुखर उपन्यासकार संजीव उल्लेखनीय माने जाते हैं। जिन्होंने कोयला खदानों में मजदूरी करने वाले संघर्षशील, भयावह, असुरक्षित, शोषित जीवन का जीवंत चित्र धार उपन्यास में उभारा है।

प्रमोद कुमार प्रसाद
असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
जे.के. कॉलेज,
पुरुलिया, पश्चिम बंगाल

मुख्य शब्द : साहसिकता , विद्रोह ,विरोध ,पूँजीपति ,सरकारी–तंत्र।

प्रस्तावना

हिन्दी कथा–साहित्य की वर्तमान पीढ़ी में जिन रचनाकारों ने आदिवासी जीवन को केन्द्र में रखकर सृजन किया संजीव उनमें विशेष उल्लेखनीय है। संजीव हिन्दी कथा–साहित्य के सातवे–आठवें दशक के ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने कथा–जगत को नया मोड़ प्रदान करके साहित्य में अपनी अलग पहचान बनाई है। विचारों से प्रगतिशील–जनवादी होने के नाते उनकी दृष्टि हमेशा से शोषितों, पीड़ितों और उपेक्षितों के प्रति रही है। जो समाज में बहुसंख्यक होते हुए भी निरंतर पीछे हैं, जिनकी सुध लेने वाला कोई नहीं है। यूँ तो संथालों की व्यथा–कथा को उन्होंने ने 'सावधान नीचे आग है', 'पाँव तले की दूब','जंगल जहाँ शुरू होता है' जैसे उपन्यासों में चित्रित किया है। 'धार' में उपन्यासकार ने आदिवासी समाज की विभिन्न समस्याओं यथा–आर्थिक अभाव, पूंजीपतियों द्वारा शोषण, ठेकेदारों एवं पुलिस द्वारा शोषण, अंधविश्वास, नारी शोषण आदि के माध्यम से आदिवासी समाज की विभिन्न समस्याओं का यथार्थ चित्रण सफल बन पड़ा है।

अध्ययन का उद्देश्य

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श को केन्द्र में रखकर लिखे गए उपन्यासों की भरमार है। शिवप्रसाद सिंह का 'शैलूष', संजीव का 'पाँव तले की दूब', 'सावधान नीचे आग है', 'जंगल जहाँ शुरू होता है', 'धार' , राजेन्द्र अवस्थी का 'जंगल के फूल', 'जाने कितनी आँखें', 'सूरज की छाँव', मैत्रेयी पुष्पा का' अल्मा कबुतरी', 'राकेश वत्स का 'जंगल के आसपास', हिमांशु जोशी का 'कमार की आग', 'मृणाल पाण्डेय का 'देवी', 'चंद्रकांता का 'कथा सतीसर', पुन्नीसिंह का 'सहरान्त', प्रकाश मिश्र का ' जहाँ बास फुलते हैं' ,मनमोहन पाठक का 'गगन घटा गहरानी', तथा तेजिन्द्र सिंह का 'काला पादरी' जैसे कई उपन्यास हैं जो आदिवासियों के जीवन को विमर्श का विषय बनाते हैं। इनमें आदिवासियों के आचार, विचार, व्यवहार और अभावग्रस्त जीवन को वैचारिकता के धरातल पर अभिव्यक्ति मिली है। संजीव ने अपनी रचनाधर्मिता के साथ–साथ सामाजिक प्रतिबद्धता का निर्वाह करते हुए आदिवासी समाज का यथार्थ चित्रण

किया है। उपन्यासकार का आदिवासियों के प्रति गहरी संवेदनशीलता पाठक के मन–मस्तिष्क को गहरे तक स्पर्श करता है। शोषण के चक्रों में फसें इन आदिवासियों में चेतना का स्वर प्रस्फुटित करना ही संजीव का मुख्य उद्देश्य रहा है।

साहित्यावलोकन

संजीव के उपन्यासों में आदिवासी जनजीवन को केंद्र में रखकर स्पष्ट समीक्षा तो नहीं आई है लेकिन विभिन्न शोध विषयों में उन पर शोध लेख जरूर छपकर आये है। जिसमें आदिवासी जीवन के यथार्थ को बड़ी गंभीरता के साथ विश्लेषित किया गया है जिससे की आदिवासी जीवन का फलसफा स्पष्टतः परिलक्षित होता है। (2012) में डॉ. शहाजहान मणेर ने 'सामजिक यथार्थ और कथाकार संजीव' में लिखा है कि – "धार शीर्षक का प्रतीकात्मक अर्थ है श्रमिक वर्ग संगठित होकर हमेशा अन्याय के खिलाफ लड़ता रहे। अतः स्पष्ट है कि इस 'धार' उपन्यास में आदिवासी जीवन तथा उनकी चेतना , अधिकारबोध और संघर्ष का अंकन हुआ है।"[23] वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्तर पर आदिवासी जनजीवन में हो रहे बदलाव विरोध और संघर्ष को इस शोध आलेख के माध्यम से उजागर किया गया है। उपरोक्त विषय पर मेरी जानकारी के अनुसार 2012 के बाद कोई शोधपरक कार्य नहीं किया गया है।

आदिवासी समाज यहाँ का मूल निवासी है और मूल मालिक भी। जिस जंगल, पहाड़ या दुर्गम प्रदेश में वह रहता है, वहाँ का मालिक वह स्वयं है। लेकिन स्वाधीनता के बाद यहाँ कि राजनीतिक, सामाजिक और प्रशासनिक व्यवस्था ने आदिवासियों का खूब शोषण किया है। आदिवासियों की सबसे बड़ी समस्या उनका आर्थिक शोषण है। आदिवासी समाज का एक सच है कि इस समाज में चोरी करना तथा भीख माँगना नहीं होता। यह अपनी इज्जत को नहीं बेचते। लेकिन अब इस समाज में सब कुछ होता हुआ दिखाई दे रहा है। इसका मूल कारण आदिवासियों के संसाधनों का छिन जाना है। बाह्य जगत का ज्ञान न होने से तथा अनपढ़ होने के कारण अर्थाजन का कोई निश्चित साधन न होना तथा संथाल जाति दो वक्त की रोटी और रोजी के लिए आज संघर्ष करती नजर आती है। उनकी व्यथा यह है कि वे ईमानदारी से कोई काम करना चाहें तो उन्हें करने नहीं दिया जाता है। पुलिस,ठेकेदार और गुंड़े उन्हें तंग करते हैं। आर्थिक शोषण मानों उनके जीवन में कुंडलीमार कर बैठा हुआ है। फलस्वरूप अभाव के कारण आदिवासियों को अपना पेट भरने के लिए दूसरे गलत धंधों को अपनाना पड़ता है। जीवन यापन करने के लिए उन्हें किन स्थितियों से गुजरना पड़ता है इस सच का पता हमें मैना के इस कथन से चलता है – "पहले हम चोरी का चीज है, नईं जानता था, भीख कब्भी नईं माँगा, चुगली–दलाली कब्भी नई किया, इज्जत कब्भी नईं बेचा, आज हम सब करता, आदत पड़ गया है, बल्कि कहें, इसके बिना गुजारा नईं।"[1] मैना इसी क्रम में आगे कहती है –"धन्न मनाऊँ रेल कम्पनी का कि बछड़ा–बकरा कट जाता है और हमको भोज खाने को मिल जाता। धन्न मनाऊँ रेलवई पुलिस का, हमको सिलतोड़ी कराता, हमरा बहिन–बेटी माँ के साथ रंडीबाजी करता कि हमको दू–चार पैसा भेंटा जाता, धन मनाऊँ सरदार निहाल सिंह का कि हमरा चोरी हजम करके टरक से रेलवई कारखाना का कूड़ा हियाँ फेंकता कि हम लोहा–पीतल बीन–बान के उनको बेंच के पेट चलाता।"[2] चोरी छुपे कोयला निकालना और बेचना इन आदिवासियों का प्रमुख व्यवसाय है। कोयला की खादानों में काम करने वाला यह समाज अत्यंत त्रासदमय स्थितियों में गुजरता है। कठिन परिश्रम करने पर भी उन्हें पेट भरने लायक पैसा नहीं मिलता क्योंकि प्राप्त मजदूरी का कुछ हिस्सा पुलिस और गुंडो को कमिशन के रूप में देना पड़ता है। खदानों के मालिक, ठेकेदार, माफिया, पुलिस सभी मिलकर इन आदिवासियों का शोषण करते हैं। यथार्थतः कोयला खादानों में कड़ी मेहनत करने वाले बेबस आदिवासियों पर सदैव अभावों के बादल मंडराते रहते हैं। उनका दर्द यह है कि वह टाटा बिरला बनना नहीं चाहता। केवल परिश्रम करके जीवन निर्वाह करना करना चाहता है परन्तु भ्रष्ट व्यवस्था में उसे यह भी नसीब नहीं होता। 'धार' उपन्यास में प्रेमालुला गरीबी, शोषण से तंग आकर भाई मंगर द्वारा पत्र लिखवाता है–" धंधा–पानी हिंया पे ठीक नईं। अब हमरा गाँव भिखमंगा हो गया है,.... ..हिंया भीख और पुलिस का दलाली छोड़ के कोई धंधा नही। ......चोरी से कोइला काटने का लेकिन पकड़ाए तो खैर नहीं। कोई नहीं बचाने आएगा।"[3]

उद्योग–धंधो का प्रतिनिधि करनेवाले पूंजीपति वर्ग के लोग अपने कारखानों में मजदूरी करनेवाले लोगों का आर्थिक शोषण करते हैं। आदिवासियों के जन–जीवन के संघर्ष के सन्दर्भ में खगेन्द्र ठाकुर ने लिखा है – "उनके संघर्ष की जटिलता के पीछे पूंजीपतियों और सरकारी कुटिलता काम करती रहती है।"[4] धार उपन्यास में उद्योगपति महेन्द्र बाबू आदिवासियों के इलाके में तेजाब का कारखाना लगाते हैं। इस कारखाना से निकलने वाले कचरों ने गाँव की खेती–बाड़ी, कुँआ–पोखर सब खराब कर दिया। कुँए का पानी तक पीने लायक नहीं रहा। इनके खेत बंजर हो गए है। संपूर्ण आदिवासी परिवेश विशाक्त हो गया। ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की तेज किरणें और तेजाब की फैक्टरी का धुँआ आदिवासियों के लिए जानलेवा बन जाता है। बारिश में पानी की जगह तेजाब बरसने लगता है। अतः आदिवासियों को जीवनयापन की समस्या से जुझना पड़ता है। मैना के शब्दों में–"हमको याद आता, जब हम बच्चा था, खेती से चार–छै महीना का काम चल जाता, आज एक दिन का भी नईं। खेत–खतार, पेड़, रूख, कुआँ, तालाब, हम और हमारा बाल–बच्चा तक आज तेजाब में गल रआ है, भूख में जल रआ है।"[5]

पूंजीपति धन कमाने के स्वार्थ में आदिवासियों की जमींन तथा जिन्दगी को ही सिर्फ बर्बाद नहीं करते हैं बल्कि फैक्ट्रियों में काम करनेवाले मजदूरों को उनकी मजदूरी भी समय से नहीं देते। कारखाना में काम करने वाला मजदूर अपना दर्द इन शब्दोँ में बया करता है– "चार–चार महीना का तनखाह रोक के रखा, पूरा बाँसगड़ा में जहर घोल दिया, सबको लँगड़ा, लूला, अपाहिज और रोगी बना दिया।"[6] उक्त कथनों से विदित होता है कि संथाल आदिवासियों का जीवन कितना अभावग्रस्त है।

आर्थिक शोषण के साथ–साथ इन आदिवासियों को पग–पग पर पुलिस की अमानवीयता के कठोर दंश को भी झेलना पड़ता है। पुलिस की भूमिका एक समाज सेवी संगठन जैसी होती है। लेकिन आज पुलिस की भूमिका बदली हुई –दृष्टिगोचर होती है। इनके मन में इस वर्ग के प्रति किसी प्रकार की हमदर्दी नहीं है। दया और सहानुभूति से इनका किसी प्रकार का संबंध नहीं है। पुलिस किसी भी घटना की छानबीन, पूछताछ सामनेवाले को विश्वास में लेकर नहीं करती बल्कि आदिवासियों के साथ पुलिस बर्बरतापूर्ण आचरण करती है। धार उपन्यास में आदिवासी अपनी जीविकोपार्जन के लिए अवैध कोयला निकालते हैं। कोयला निकाल कर ठेला पर ले जाते समय पुलिस के जवान कमीशन की पूरी रकम नहीं पहुँचाने के कारण मंगर की निर्दयता से पिटाई करते हैं। मंगर जबह किए जा रहे बकरे की तरह तड़पता है। पुलिस द्वारा मंगर को पिटते देखकर मैना पुलिस से कहती है –"पैसा तो पहुँचाया था साहेब।"[7] यह सुनते ही पुलिस आग–बबूला हो उठती है –"पकड़ कर बंद कर दे हरामजादी को ? पैसा दिखाती है। कितना पैसा है ?.....कम से कम सौ पूरा कर।"[8] रिश्वत की रकम देने के लिए रात के समय पुलिस के खौफ से मंगर पुलिस थाना नहीं जाता। भयंकर रात के समय जब मैना अकेले पुलिस थाना जाने लगती है तब वह महसूस करती है– "इत्ती रात को अकेले थाना जाना मरघट जाने से भी ज्यादा भायावना है।"[9]इससे स्पष्ट होता है कि आदिवासी पुलिस के खौफ से कितने पीड़ित हैं। संजीव यहाँ पुलिस के उस दोहरे चरित्र को उजागर करते हैं। पुलिस एक तरफ बड़े–बड़े कोल माफियाओं से मोटी रकम लेकर ट्रक के ट्रक अवैध कोयला को पार कराती है लेकिन वहीं दूसरी तरफ आदिवासियों को अपने जीविकोपार्जन के लिए कोयला ले जाते समय दुर्व्यवहार करती है।

अमानवीयता का यह रूप केवल पुलिस वालों के यहाँ ही नहीं दिखाई देता प्रत्युत ठेकेदारों के यहाँ भी देखने को मिलता है। सरकार की ओर से अनेक कामों का ठेका दिया जाता है और ठेकेदार ठेका लेते हैं जिसके कारण मजदूरों को आसानी से काम मिल जाता है। ठेकेदार कम पैसा में मजदूरों से काम करवा लेते है मजदूर गरीबी में, मजबूरी में पेट की आग बुझाने के लिए ठेकेदारों के यहाँ किसी भी प्रकार का काम करने का जोखिम उठा लेते हैं। लेकिन ठेकेदारों के मन में इन मजदूरों के प्रति तनिक भी सहानुभूति नहीं होती। 'धार' उपन्यास में ठेकेदार आदिवासियों से अवैध कोयला खनन करवाता है। एक दिन कोयला खनन करते समय संथाल आदिवासी फोकल पर जमीन धसने से मिट्टी का एक ढेला गिर जाता है और वह उसमें फंस जाता है। वह ठेकेदार से बचाने की गुहार लगाता है। तब ठेकेदार फोकल को देखकर कहता है –"अरे मार रे। अभी जिन्दा ही है साला ! मार के भर दे नून सब जगह।"[10] इस कथन से विदित होता है कि ठेकेदार कितने निर्दयी तथा स्वार्थी होते हैं। मुसीबत के समय वे मजदूर का साथ नहीं देते हैं।

आदिवासियों का शोषण करने में खदान मालिक, कारखाना मालिक, ठेकेदार, पुलिस, भ्रष्ट अफसर, माफिया और दलाल आदि के साथ–साथ कामरेड भी पीछे नहीं रहते। किसी में भी आदिवासियों के प्रति कोई हमदर्दी या प्रतिबद्धता नजर नहीं आती। आदिवासी नेता शर्मा जी कामरेड से आदिवासी मजदूरों के शोषण के बारे में दो टूक बातें करते हैं – "सुनिए कॉमरेड ! आप कहते हो कि ठेकेदार, माफिया, जोतदार और दलाल आदिवासियों का शोषण करते हैं। वे तो करेंगे ही। वह तो उनका वर्ग चरित्र है। लेकिन मैं पूछता हूँ, आप के पास भी इसका कोई जवाब है। आप का कोई चरित्र है या नहीं? आपकी कोई रणनीति नहीं ? कोई विकल्प नहीं।"[11]

किसी भी विचार को सत्य–असत्य की परख किये बिना स्वीकार करना, उस पर विश्वास करना अन्धविश्वास कहलाता है। भारतीय जनता का यह विश्वास है कि प्रत्येक सुख–दुःख का निर्माता ईश्वर है। लोगों के इसी विश्वास का फायदा उठाकर कुछ लोग समाज में गलत रूढ़ियाँ फैलाते हैं। देवी प्रकोप के भय के कारण लोग इन विचारो का खंडन करने का साहस नहीं करते हैं। यही कारण है कि आज विज्ञान के युग में भी अन्धविश्वास कायम है। विज्ञान के चमत्कारों ने यद्यपि इस प्रकार के विश्वासों को अवश्य झकझोरा है पर आज विज्ञान के युग में भी मानव भूत–पिशाच, तंत्र–मंत्र, टोना–टोटका, ओझा, पूजा–पाठ, मन्नत, शुभ–अशुभ, पाप–पुण्य आदि अंधविश्वास की समस्याओं से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाया है। अशिक्षा और अज्ञानता के कारण आज भी आदिवासी समाज अंधश्रद्धा और रूढ़िवादी संस्कारों के बीच उलझा पड़ा है। उनमें अंधविश्वास की मात्रा कुछ अधिक ही पायी जाती है। जैसे भूत–पिशाच का हावी होना, जीतेजी श्राद्ध करना, स्त्रियों को डायन बताकर मार डालना आदि। गाँव में कोई अशुभ घटना होती है या कोई बीमार पड़ता है, या किसी की गाय–बकरी मर जाती है, तब यह माना जाता है कि किसी मनहूस व्यक्ति के कारण अशुभ घटनाएँ घटित होती है। तब उस व्यक्ति को जनागुरु ओझा डायन घोषित करता है। 'धार' उपन्यास में संथाल आदिवासी मैना और उसकी माँ के मनहूस होने से अशुभ घटनाएँ घटित होती हैं। मैना की माँ को डायन बता कर कुत्ती की तरह पीट–पीटकर मारना, बाप को भगत का झाँसा देकर लूटना, ओझा का मैना को डायन सिद्ध करना आदि इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। यथा– "बाँसगड़ा में सुबह से कनफुसियाँ चल रही है।.........कल शंकर की दो भेड़े गायब हो गयी थीं। उसने जानुगुरू (ओझा) से विचारवाया तो जान गुरु का सगुन बोला कि भेड़ मैना की कुइयाँ में है! वहीं थीं। दोनों भेड़ों के गले में दाँत धँसा के खून किया गया था। पंचानन ओझा से गुनी हियाँ दूसरा आदमी है नहीं, जो बताया रत्ती–रत्ती सही निकला।"[12] लोगों का संदेह यकीन में बदल गया। मैना को डायन कहा गया। "मैना डायन है या नहीं – इस विषय पर उन्हें संशय था लेकिन इस बात में कोई दुविधा नहीं कि जो कुछ हुआ, ठीक नहीं हुआ। देवता जरूर रूष्ट हो गये होंगे। जाने क्या अनहोनी होने वाली है।"[13] इस घटना के तीसरे ही दिन अवैध कोयले की बिक्री पर पुलिस और माफिया दल की गोली–बारी में कई लोग मारे गये। इसके लिए मैना को दोषी ठहराया गया –"अच्छा नहीं किया मैना ने। देवता के पजाँय तो जान लेकर ही

छोड़ते हैं। वे हाथ जोड़कर जाहिर थान में खड़े हैं, जो भूल चूक हुई उसे छिमाकरें हे देवता।''[14] कहते हैं होनी को कोई नहीं टाल सकता, लेकिन उसके लिए किसी को दोषी ठहराना अंधविश्वास ही है।

आदिवासी समाज में रीति–रिवाजों, लोकाचार और अंधश्रद्धा को बहुत ही महत्व दिया जाता है। यहाँ भ्रष्ट होते ही आदमी का श्राद्ध कर देते हैं। उपन्यास की नायिका मैना अपने पति को छोड़कर अन्य पुरूष (मंगर) के साथ रहने लगती है। इस कारण से संथालों की परंपरा के अनुसार कुल्टा मैना का जीते जी श्राद्ध कर दिया जाता है। उपन्यासकार लिखते हैं–"चबूतरे पर सौंतालों की परम्परा के अनुसार कुल्टा मैना का श्राद्ध हो रहा था।"[15]

'धार' उपन्यास में आदिवासियों के सामाजार्थिक शोषण, अमानवियता के साथ–साथ स्त्री अस्मिता की छवियाँ भी उभर कर सामने आती हैं। अपनी जमीन से विस्थापित होने के बाद जिस प्रकार आदिवासी समाज को अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु अनेक प्रकार के संघर्ष करने पड़ते हैं उसी प्रकार आदिवासी स्त्रियों को भी अपने स्वाभिमान तथा अस्मिता की रक्षा हेतु अनेक प्रकार के संघर्ष करने पड़ते हैं।संजीव प्रगतिशील–जनवादी कथाकार हैं। इसलिए उन्होंने न तो नारी के रूप वैभव को कल्पना की दृष्टी से देखा और न ही नारी के सौन्दर्य को स्वर्गिक जादू ही माना है। वे जीवन और साहित्य में नारी स्वातंर्त्य एवं समानाधिकार के पक्षधर रहे हैं।उन्होंने मैना के माध्यम से आदिवासी नारी के संघर्षशील चरित्र को प्रस्तुत किया है। मैना द्वारा तेजाब का कारखाने लगाने का विरोध करने पर उसे जेल भेज दिया जाता है। जेल में पशु तुल्य जेलर मैना के साथ बलात्कार करता है। जेलर के अलावा समाज के अन्य लोग भी उसका दैहिक शोषण करते हैं। उपन्यासकार बताता है कि जेलर के अलावा मंगर, पंडित सीताराम जैसे कितने मर्दों ने उसे नोचा। समाज के चरित्र संपन्न लोगों की नजरों में मैना भोग का साधन मात्र थी। मैना की त्रासदी का कोई अन्त नहीं, एक के बाद एक संकट की घड़ी से उसे गुजरना पड़ता है। उस पर एक संकट और आया। उसकी बेटी सीतवा अचानक गायब हो जाती है। वह एक खलासी के साथ भाग जाती है। उसकी इस भयावह स्थिति का यथार्थकंन करते हुए संजीव लिखते है –''माँ को डायन बताकर कुत्ती की तरह पीट–पीट कर भगा दिया गया,.............बेटी सितवा को लालच देकर बरगला लिया गया। लुत्ता पराया है, और टिपका भी उसका नहीं, फोकल का बेटा है, फिर उसकी झोली में बचा ही क्या ? एक प्रतिहिंसा की आग और एक नफरत का जज्बा, जो उसे कभी भी चौन नहीं लेने देता।''[16] इन तमाम परेशानियों के बावजूद भी मैना जीवन सघर्ष से हारती नहीं है। वह निःस्वार्थ भाव से समस्त संथाल परगना के आदिवासियों के शोषण के विरूद्ध संघर्ष करती है। फिर वह संघर्ष चाहे पिता, पति, समाज, पूँजीपति, ठेकेदार या पुलिस के प्रति ही क्यों न करना पड़े।आदिवासियों के अस्तित्व–अधिकारों की रक्षा हेतु वह किसी की मनमानी को रोड़ा या रुकावट के रूप में स्वीकार नहीं कर सकती।

आदिवासी नारी गरीबी, अज्ञान, अंधश्रद्धा एवं सुख–सुविधा से वंचित घिनौनी जिन्दगीं जीता है पर उसके भीतर प्रखर रूप से स्वाभिमान और प्रतिशोध की चेतना परिलक्षित होती है। लेखक ने आदिवासी नारी मैना को अन्याय–अत्याचार के खिलाफ संघर्ष करने वाली नारी के रूप में प्रस्तुत किया है। 'धार' उपन्यास की मैना में स्वाभिमान तथा संघर्ष–चेतना दिखाई देती है। मैना अपने पिता और पति के खिलाफ संघर्ष करती है क्योंकि मैना के पिता ने अपनी जमींन तेजाब फैक्ट्री शरू करने के लिए महेंद्रबाबू को देते हैं। तेजाब फैक्ट्री के पानी से तालाब का पानी तथा कुएँ का पानी दूषित होता है। जमीन बंजर बनती है और आदिवासी बीमार पड़ते हैं। गाँव के लोगों में सचेतनता लाने के लिए मैना गाँव वालों को साथ में लेकर आन्दोलन कराती है– "मैना, और गाँव के बाकी लोग, नारा लगा रहे थे, "भाइयो, काम छोड़ के निकल आवो, ऊ फैटरी नहीं, हम सब की मौत है।"[17] इतना ही नहीं मैना फैक्ट्री मालिक का साथ देने वाले अपने पिता तथा पति के खिलाफ संघर्ष करती है। यहाँ मैना के स्वभाव में स्वाभिमान तथा संघर्ष चेतना परिलक्षित होता है। पिने के लिए पानी नहीं मिलने पर गाँव में से शहर को जाने वाली सरकारी पाईप को तोडती है। संजीव लिखते हैं–"हथौड़ा उठा लाई और दोनों हाथों से उसने पाइप के ज्वाइंट पर दे मारा। देखते ही देखते फव्वारे की शक्ल में पानी का स्रोत खुल गया। तालियाँ बज उठी। सबने चुल्लू भर–भर पानी पिया।" [18]

मैना जमीन मालिक को पैसा देकर जमीन से कोयला निकालता है तब महेंद्रबाबू मैना से कहते हैं– "चौधारी बाबू नहीं, हमसे पूछो, हमसे, अब जमीन हमारी है।"[19] और जमीन से निकला हुआ कोयला ले जाने लगते हैं तब मैना स्वाभिमान से कहती है –"एक चीज एक बार बेचा जाता है कि हजार बार।.......मर–मर के निकला हम, और अब हो गया तुमरा बाप का? खबरदार जो हाथ लगया !"[20] इसी प्रकार जब मैना को ओझा डायन घोषित करता है तब मैना ओझा का असली रूप पह्चान कर ओझा की गर्दन पकड़ते हुए कहती है–" ओझा, "खा जाहिर थान का कसम ! खा माराँ बुरू का कसम। खा बधना देवी का कसम कि तू घूस नहीँ खाता है, सच बोल रआ है।"[21] वस्तुतः मैना की यह लड़ाई व्यक्तिगत स्वार्थ के खिलाफ सामूहिक स्वार्थ की लड़ाई है। मैना आदि से अन्त तक संघर्षरत होकर अपने आदिवासी भाई–बहनों के अधिकारों के लिए विद्रोहिणी के रूप में उभरती है यह आदिवासी नारी चेतना का प्रमाण है। 'धार' की सार्थकता शर्मा के आक्रामक वक्तव्य से स्पष्ट होती है। आदिवासियों को चेताते हुए वह कहता है– ''तो साथियों, यह धार ही हमारी शक्ति है और धार का भोथरा होना ही मौत है। यहाँ ही नहीं,जहाँ–जहाँ भी साम्यवादी सरकारें हैं, यह उपमा लागू होती है।.....चारों तरफ भेड़िये गुर्रा रहे हैं। वे हमें खा जाने पर आमदा है। लेकिन क्या हम उनके नापाक इरादे पूरे होने देंगे? नहीं ! हर्गिज नहीं। इसलिए हमें धार की जरूरत है, सतत सान से ताजा होती 'धार'। चाहे हमें कोई भी कुर्बानी क्यों न देनी पड़े।" [22]

निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि संजीव ने धार उपन्यास में शोषण के दुरूह और दारूण तंत्र को उसकी पूरी भयावहता में अंकित किया है। उपन्यासकार की गहरी संवेदनशीलता की धार मन को सहज ही छू लेती है। 'धार' आदिवासियों के जीवन संघर्षों, घात–प्रतिघातों एवं आशा–आकांक्षाओं का चित्रण मात्रन होकर इस समाज में हो रहे परिवर्तन का प्रमाण भी प्रस्तुत करता है। शोषण की ढेर के नीचे दबी यह विद्रोह रूपी चिंगारी प्रज्वलित होने लगी है। अब वह दिन दूर नहीं जब संघर्षों की लपटों में इन पर होने वाले अन्याय, अत्याचार राख बनकर खाक हो जाएगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *संजीव–धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011, पृ. 54*
2. *संजीव–धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011, पृ0– 54*
3. *संजीव–धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011, पृ0– 41*
4. *ठाकुर खगेन्द्र, उपन्यास की महान परम्परा ,स्वराज प्रकाशन ,नई दिल्ली ,2012 पृष्ठ संख्या – 254*
5. *संजीव–धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011, पृ0– 54*
6. *संजीव–धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011, पृ0– 58*
7. *संजीव–धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011, पृ0– 100*
8. *संजीव–धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011, पृ0– 100*
9. *संजीव–धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011, पृ0– 101*
10. *संजीव–धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011, पृ0– 175*
11. *संजीव–धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011, पृ0– 123*
12. *संजीव–धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011, पृ0– 116*
13. *संजीव–धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011, पृ0– 118*
14. *संजीव–धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011, पृ0– 117*
15. *संजीव–धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011, पृ0– 52*
16. *संजीव–धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011, पृ0– 106*
17. *संजीव–धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011, पृ0– 22*
18. *संजीव–धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011, पृ0– 56*
19. *संजीव–धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011, पृ0– 99*
20. *संजीव–धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011, पृ0– 100*
21. *संजीव–धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011, पृ0– 118*
22. *संजीव–धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011, पृ0– 157*
23. *मणेर डॉ. शहाजहान, सामाजिक यथार्थ और कथाकार संजीव , श्रुति पब्लिकेशन ,2009 ,पृष्ठ – 25*